वावों की रानी : "रानी की वाव"

शशि रंजन कुमार

बाढ़ प्रबंधन अध्ययन केन्द्र, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, पटना (बिहार)

ई–मेलः srk9266@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत आलेख में विकराल होती जा रही शुद्ध जल के उपलब्धता की समस्या के समाधन हेतु भारत में प्रचलित परंपरागत जल संरक्षण की कुछ विशेष पद्धतियों के उपर एक नजर दौड़ाने की कोशिश की गई है।

कुंजी शब्दः जल संरक्षण; रानी की वाव; रहिमन पानी राखिए; जल संकट; भूमिगत जल; वर्षा जल

Abstract

Water is essential for human life, development and environment, but it is a finite and vulnerable resource which has quantitative limitations and qualitative vulnerability. Clean water scarcity has become one of the big problems in India and other countries all over the world affecting people's lives in many ways. In many regions of the India there is much shortage of water and people have to go for long distance to get drinking and cooking water to fulfill daily requirement. Many communities in the past have effectively employed water harvesting to meet their water needs. Ancient technologies have shown themselves to be useful today. This paper highlights some traditional water conservation techniques of India.

प्रस्तावना :

'रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून', लगभग सवा चार सौ साल पहले की गई एक सशक्त भविष्यवाणी या चेतावनी जो भी चाहे कह लें इसकी प्रासंगिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। लगभग सवा चार सौ साल पहले कविवर रहीम के दिमाग में क्या विचार कौंधा होगा जो उन्होंने इस काव्य सूक्ति की रचना कर दी। यही कहा जा सकता है कि शायद उन्होंने भविष्य को देख कर निहित खतरे को भांप लिया होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पानी का कोई दूसरा विकल्प नहीं है और यह जीवन का पर्याय है। मनुष्य के शरीर में संवेदना का संचार पानी के कारण ही होता है। अतः वर्षाजल के रूप में अमृत की जो बूंदें प्रकृति से मानव को उपहार में मिलती हैं उन्हें सीप की मोती की तरह संरक्षित कर रखना चाहिए। वर्षा जल संरक्षण का महत्व इस तथ्य से भली भांति समझा जा सकता है कि विश्व में सर्वाधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में से एक मेघालय के चेरापूंजी में स्थानीय निवासियों को पीने के पानी के लिये कई किलोमीटर दूर जाना पड़ता है और मानसून के बाद तो पानी खरीदना पड़ जाता हैं (चित्र 1)।

पृथ्वी पर जल की कुल मात्रा स्थिर है परंतु इसका वितरण समय तथा स्थान के साथ बदलता रहता है। मनुष्य ही नहीं अपितु पूरे जैविक–चक्र को नियमित रूप से शुद्ध जल की आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर जल की संपूर्ण मात्रा का लगभग 95% भाग समुद्रों में पाया जाता है जो खारा होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से पेयजल के लिये अनुपयोगी होता है। जीवन के लिये उपयोगी शुद्ध जल की मात्रा 2 से 7% तक ही है। इस जल का तीन चौथाई भाग हिमरूप, ग्लेशियरों में संग्रहित है तथा शेष जल का एक चौथाई भाग भूमिगत एवं सतही जल के रूप में है। इस प्रकार पृथ्वी पर पाए जाने वाले

संपूर्ण जल की मात्रा का 0.3% भाग ही शुद्ध एवं स्वच्छ जल है जो प्रत्यक्ष रूप से समस्त जीवों के लिये जीवन का आधार है। शायद यही कारण है कि भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र इसरो से लेकर अमेरिकी अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र नासा तक अब जितने भी यान ब्रह्मांड का रहस्य जानने के लिये प्रक्षेपित किये जा रहे हैं उन सबमें जल की खोज एक अनिवार्य अंग हो गया है।

(चित्र 1)

भारत में प्रचलित जल संरक्षण की परंपरागत पद्धतियां :

जल संरक्षण के लिये विभिन्न उपाय हमारे देश में प्राचीन समय से जरूरतों के अनुरूप और भौगोलिक परिस्थियों के अनुसार विभिन्न रूपों में अपनाए जाते रहे हैं। चाहे राजस्थान और बुंदेलखंड के तालाब हों या बिहार की मौर्य कालीन आहर पईन व्यवस्था, नर्मदा घाटी की हवेली हो या हिमालय की गुलें, महाराष्ट्र की बंधारा विधि हो या तमिलनाडु की एरी व्यवस्था, इन सब माध्यमों से अपने–अपने भौगोलिक विशेषताओं के मद्दे नजर स्थानीय निवासियों ने वर्षा जल के अधिकतम उपयोग की उत्कृष्ट तरकीबें विकसित की।

परंपरागत जल संरक्षण की प्रणालियां एक सामूहिक प्रयास है। यहां तक कि घुमंतु पद्धति के लोगों ने भी अपने सामूहिक प्रयासों से जल संरक्षण एवं जल संग्रहण को उल्लेखनीय देन दी। कच्छ की वीरदी पद्धति मालधारी समुदाय की देन है (चित्र 2)। जबकि उदयपुर में आज जल का सबसे महत्वपूर्ण स्त्रोत बनी हुई पिचौला झील बंजारों ने बनाई थी (चित्र 3) (1362, AD)। इसी तारतम्य में जल संरक्षण की महत्ता को जानकर जन–जन में जगरूकता फैलाने के लिये युनेस्को द्वारा गुजरात की 1000 साल प्राचीन नक्काशीदार 'रानी की वाव' (Step well) को विश्व धरोहर की सूची में शामिल करना भी एक महत्वपूर्ण कदम माना जाएगा। युनेस्को ने इस वाव को तकनीकी विकास का एक ऐसा बेहतरीन उदाहरण माना है जिसमें भूमिगत जल के उपयोग तथा जल प्रबंधन और संरक्षण की उत्कृष्ट व्यवस्था है।

वर्षा जल को संचित करने और पूरे वर्ष उसमें खेतों की सिंचाई करने के लिये बनाए जाने वाले तालाब और पोखरों की परंपरा कई जगह अभी भी प्रचलन में है। हालांकि औद्योगिक क्रांति के बाद जीवन शैली के प्रति सोच में आए बदलावों ने परंपरागत जल स्त्रोतों के प्रति उपेक्षा का रूख ही अपनाया है।

(चित्र 2)

(चित्र 3)

हिमालय की गूलें (जलस्रोत एवं संचय की विधियाँ)

हिमालय की पर्वतीय क्षेत्रों में पानी के स्रोतों से दूर बसे गाँवों में सिंचाई तथा पेयजल सुविधा के लिए कई परम्परागत विधियाँ है, इनमें कुछ प्रमुख निम्न है (देवसिंह पोखरिया)–

(1) बड़ी गूले–बड़ी गूल बनाते समय यदि कहीं खाई या नाला आए तो वहाँ चीड़ या जामुन के तने को नालीदार बनाकर पानी दूसरे छोर पर पहुँचाया जाता है।

(2) छोटी गूले– इनमें भी प्रायः खाई या नाले आने की दशा में चीड़, जामुन या केले के पत्तों की नलियाँ काम में लाई जाती हैं। वहीं जल संचय की अन्य विधियां (3) धारे (4) नौले (5) तालाब, (6) चुपटौल आदि भी अपनाए जाते रहे हैं। धारे के पास अधिकतर छायादार वृक्ष जैसे आम, पीपल, बाँज आदि लगाए जाते है।

हिमालय की पर्वतीय गांवों में खेतों का नुकसान कम हो इसलिए खेत से नीचे के भाग में स्थित खेतों के बीचों–बीच सेरा गूल निकाली जाती थी जिससे बरसात का पानी खेतों में नहीं फैले। खेतों एवं गुलों की मेढ़ों पर कौणी और झंगौरा बोया जाता था बीच में धान, तिल आदि। कौणी–झंगौरा आदि की जड़ कुछ मजबूत एव ऊंची बढ़त वाली फसल थी इसलिए इससे खेत के पगार–दीवाल कम टूटती थी । यह एक प्रदूषण से रहित परम्परागत प्रौद्यौगिकी है। हिमालय की पर्वतीय क्षेत्रों में इसे जल संसाधन का एक प्राचीन एवं समुन्नत उपयोग कहा जा सकता है (चण्डी प्रसाद भट्ट)।

बिहार की मौर्य कालीन अद्भुत पारंपरिक आहर– पईन–जोल व्यवस्था

मौर्य काल से ही मगध वासियों ने सामुदायिक श्रम से फल्गु, पुनपुन आदि इन नदियों से सैंकडों छोटी –छोटी शाखायें निकाली जिससे की बरसात में पानी कोसों दूर खेतों तक पंहुचाया जा सके। सामुदायिक श्रम से जल संचयन की इस अद्भुत विधा और तकनीक का विकास, मौर्य काल से इस इलाके में होता रहा, जो की ब्रिटिश शासन तक चालू रहा ।

आहर नदी की चौड़ाई से मीलों लम्बी खोदी जाती थी जो कई गाँव की धान के खेतों की सिंचाई की जरूरत को पूरा करती थी। आगे चल कर आहर छोटे छोटे शाखाओं पईन में बँट जाती थी। आहर और पईन की खुदाई से निकली मिटटी से अलंग बनाये जाते थे जो की अतिवृष्टि में बाढ़ का सामना करने में सहायक होता था । भूक्षेत्र के केंद्र में गाँव और गाँव के चारों तरफ समतल मैदान में खेत, मगध वास्तुकला की विशेषता थी। मगध में खेतों के बड़े समुहों (50 से 100/200 एकड़ रकबे) को एक खंधा कहा जाता है। अक्सर खंधे की सीमा पर चौडी मजबूत अलंग बनाये जाते थे, और अलंग से सटे छोटे आहर होते थे–जिसमें नदी का पानी बड़े आहर से आता था। अलंग में पुल की व्यवस्था की जाती थी जिससे जरूरत के अनुसार खंधे में पानी लिया जाता था। खंधे के भीतर चौडे आहर, पतले पईन में बँट जाती थी जिससे नदी का पानी खेत तक पहुंचता था। पईन में थोडी दूर पर करिंग चलने के लिए अन्डास निर्धारित होता था। अन्डास पर खम्भा–लाठा से करिंग नाध कर हर खेत में करहा (छोटी नाली) द्वारा खेत की सिंचाई होती थी। गया जिले के दक्षिणी इलाके में हदहदबा पईन, एक सौ आठ गाँव की सिंचाई करती थी। बरगामा नामधारी पईन (ऐसा पईन जो बारह गाँव को सिंचित करे) मगध के हर क्षेत्र में है।

जोल आहर–पईन व्यवस्था का एक अहम् हिस्सा रहा है। खंधे के नीचले हिस्से को जोल कहा जाता है। जोल एक तरह से खंधे की सिंचाई की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक तरह से जलाशय का काम करता है। अलंग से सटा आहर (चौडे आहर को खई भी कहते हैं) और उससे सटे निचले खेत को जोल का एक हिस्सा माना जाता है। जोल खंधे के लिए पानी का खजाना भी कहलाता हैं। जोल मे धान की लम्बी और गहरे पानी को सहने वाली प्रजातियाँ लगायी जाती हैं।

आहर–पईन–जोल वाली सिंचाई व्यस्था के संदर्भ में छालन और गुयाम व्यवस्था का अहम् स्थान है। छालन सिंचाई की वह व्यवस्था है जिसमें नदी का पानी आहर तथा आहर से पईन होता हुआ करहों (छोटी–छोटी नालियों) द्बारा सीधे धान के खेत में पंहुच जाता है। जैसे हीं धान के खेत में पानी पर्याप्त होता है, खेत में आने वाले करहे को बंद कर दिया जाता है और इस तरह नदी का पानी बिना विशेष मेहनत के हर खेत में पहुँच जाता है। खंधे में पानी प्रयाप्त होने पर पुल का मुंह बंद कर दिया जाता है। छालन की इस व्यवस्था में नदी का पानी, जमीन के स्वाभाविक ढलान से स्वतः पईन और करहों से होता हुआ खेतों तक पंहुच जाता है (कौशल किशोर) ।

फल्गु, पुनपुन के जल से आहर –पईन – जोल वाली विधा ने धान की खेती पर आधारित वह अर्थव्यवस्था तैयार की जिसने मगध साम्राज्य, बौद्ध धर्म के उत्कर्ष, और पाल कालीन वैभव और संस्कृति को जन्म दिया। कभी इसी सामुदायिक श्रम कृषि व्यवस्था के सहारे मगध ने इतिहास रचा था। जरूरत इस बात की है की इस इलाके की परम्परगत आहार–पईन और जोल वाली व्यवस्था को नए सिरे से, नए जमाने की जरूरत के लिहाजन–सिविल इंजीनियरिंग की नवीनतम विधा और तकनीक का इस्तेमाल करते हुए पुनर्स्थापित किया जाय। मगध की इस ऐतिहासिक आहर–पईन–जोल विधा पर अब समुचित शोध की आवश्यकता है। सनद रहे की मगध की इसी उर्वर भूमि ने आहर पईन–जोल विधा आधारित वह आर्थिक आधार मुहैया किया था जिसकी गोद में महान मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ।

'रानी की वाव'- गुजरात स्थित प्राचीन भारत में भूमिगत जल–प्रबंधन स्थापत्य ढांचे की अनोखी मिसाल :

रानी की वाव 11वीं सदी में बनी एक ऐसी सीढ़ीदार बावड़ी है जो काफी विकसित और विस्तृत होने के साथ–साथ प्राचीन भारतीय शिल्प के सौंदर्य का भी एक अनुपम उदाहरण है। यह भारत में बावडियों के सर्वोच्च विकास का एक सुन्दर नमूना है। रानी की वाव देश की सबसे अच्छी वाव में से एक होने के साथ गुजरात के प्राचीन राजधानी की प्रख्यात धरोहर भी है। गुजरात की वाव पानी के संग्रह तथा सामाजिक व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक महत्व भी रखती थी। रानी की वाव स्मारक वास्तुकला का वह बेजोड़ नमूना है, जो आधुनिक इंजीनियरिंग की दुनिया को भी आश्चर्यचकित कर सकता है। मारु–गुर्जर शैली का बना यह सात मंजिला सीढ़ीदार कुआं भारत में अपनी तरह का एक अनूठा वाव है। भूगर्भीय बदलावों के कारण आने वाली बाढ़ और लुप्त हुई सरस्वती नदी के कारण यह बहुमूल्य धरोहर तकरीबन 700 सालों तक गाद की परतों तले दबी रही। बाद में भारतीय पुरातत्व विभाग ने इसे खोजकर, शानदार स्थिति में इसका संरक्षण भी किया। मूल रूप से बावड़ी सात मंजिल की थी, किन्तु इसकी पांच मंजिलों को ही संरक्षित रखा जा सका है। वास्तुकला के नायाब नमूनों से अलंकृत स्तंभों वाला यह कुआं पहली नजर में ही मन मोह लेता है (चित्र 4)। इस वाव को साल 1063 में सोलंकी राजवंश के राजा भीमदेव प्रथम की याद में उनकी पत्नी रानी उदयामति ने बनवाया था। यह वाव 64 मीटर लंबा, 20 मीटर चौड़ा तथा 27 मीटर गहरा है। दरअसल यह प्राचीन (10–11वीं ई.) समय की वास्तुकला का ऐसा बेजोड़ नमूना है, जिसकी तारीफ शब्दों में करना शायद संभव ही नहीं।

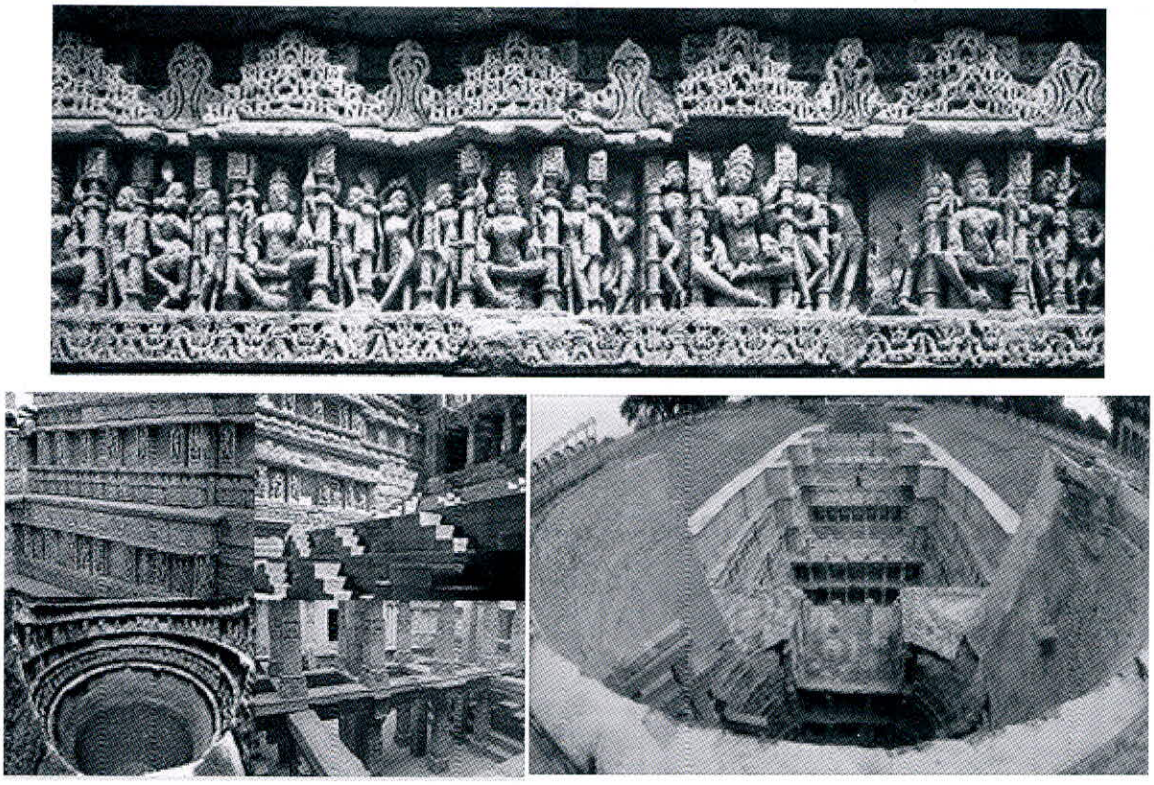

(चित्र 4)

रानी की वाव सारी दुनिया में ऐसी इकलौती बावड़ी है, जो हाल ही में यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में शामिल हुई है। ग्यारहवीं शताब्दी में बना सीढ़ीदार कुआं 'रानी की वाव' को विश्व विरासत सूची में शामिल करते हुए यूनेस्को ने इसे भूजल संसाधनों का उपयोग करने में प्रौद्योगिकीय विकास और जल प्रबंधन का विशिष्ट उदाहरण बताया। अपने एलान में समिति ने इसे भारत में स्थित सभी वाव (stepwell) की रानी का खिताब भी दिया। यह वाव (बावड़ी) इस बात का भी सबूत है कि प्राचीन भारत में जल संसाधनों के प्रबंधन की व्यवस्था कितनी बेहतरीन थी (जाहिद खान)।

जनसंख्या वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में परंपरागत जल संरक्षण की वर्तमान प्रासंगिकता :

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा जल में होती जा रही कमी के कारण पेयजल तथा कृषि कार्य में भू–जल के ऊपर निर्भरता निरंतर बढ़ती ही जा रही है। इस कारण भू–जल की गुणवत्ता में दिन–प्रतिदिन गिरावट देखी जा रही है तथा इसकी उपलब्धता भी कम होती जा रही है। अतः सतही व भू–जल का परस्पर सामंजस्य तथा वर्षा का भूजल की उपलब्धता में योगदान का अध्ययन वर्तमान बदलते परिवेश मे अत्यंत ही आवश्यक हो गया है। आज विश्व में करीब 120 करोड़ लोग जल संकट से ग्रस्त है। अफ्रीका तथा अरब के कई देशों में भीषण जल संकट छाया हुआ है। वहीं दूसरी ओर हरित क्रांति के लिये भारत में पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बिना रिचार्ज किये भूमि जल का इतना दोहन कर लिया गया कि आज यह हालत हो गई है कि अगली पीढ़ी के लिये पीने का पानी भी मयस्सर नहीं हो पायेगा। मिट्टी में खारापन आने के अलाबा भूमि बंजर हो गई है सो अलग।

बढ़ती आबादी के लिये खेती में सिंचाई, घरेलू उपयोग, तथा पेयजल एवं औधोगिक इकाईयों में उपयोग हेतु जल की मांग वर्तमान में पूरे विश्व स्तर पर सुरसा के मुंह की तरह बढ़ रही है। प्रगति की दौड़ में आज अधिक से अधिक पानी के उपयोग की होड़ सी लगी है। वहीं दूसरी ओर विकासशील एवं निर्धन देश के निवासियों के बीच पेयजल हेतु शुद्ध पानी के लिये हाहाकार मचा हुआ है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि गरीब देशों की 80% बिमारियां अशुद्ध पेयजल और गंदगी के

कारण हो रही हैं। लगभग 1.5 अरब व्यक्ति शुद्ध पेयजल की सुविधा से वंचित हैं। प्रतिदिन लगभग 35,000 व्यक्ति अतिसार रोग का शिकार बन रहे हैं।

बिहार के गया जिले में जब तक आहर पईन व्यवस्था सशक्त रही इसने बाढ़ तथा सूखे दोनों को रोकने में सहायता दी। राजस्थान में भयानक सूखे के दिनों में देखा गया है कि जहां आधुनिक पेयजल स्त्रोतों के आने के बाद भी परंपरागत संरक्षण उपायों की उपेक्षा नहीं की गई थी वहां के लोगों की पेयजल के मामले में आत्म निर्भरता बनी हुई है, पर जहां लोगों ने परंपरागत संग्रहण की उपेक्षा की थी वहां के लोग पानी को तरस रहे थे।

उपसंहार :

जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण जल की बढ़ती अशुद्धता तथा वितरण व संरक्षण एक विकराल समस्या बनती जा रही है। समय रहते अगर हम जागरूक नहीं हुए तो शुद्ध जल की उपलब्धता कथा कहानियों तक ही सीमित रह जाएगी। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा में कमी भी अपने आप में एक खतरे की घंटी है जो भूजल को रिचार्ज के लिए वर्षा की उपलब्धता की कमी को दर्शाता है। अतः वर्तमान में भूजल को भविष्य निधि मानकर अगर हमने कोई सख्त कदम इसके संबर्धन तथा संरक्षण के लिए नही उठाया तो आनेवाला भविष्य वर्तमान को माफ नहीं करेगा।

आभार :

इस प्रपत्र को हिन्दी भाषा में लिखने तथा भेजने की अनुमति प्रदान करने के लिए लेखक श्री आर. डी. सिंह, निदेशक, रा.ज.सं., रूड़की का अत्यंत अभारी है।

संदर्भ :

डॉ. देवसिंह पोखरिया, कुमाऊँ हिमालय की पारम्परिक प्रौद्यौगिकी–पद्धतियाँ

चण्डी प्रसाद भट्ट, उत्तराखंडः प्रकृति नहीं विकास को कोसें

कौशल किशोर, मगध की अद्भुत पारंपरिक सिंचाई व्यवस्था : आहर–पईन–जोल

जाहिद खान, विश्व विरासत रानी की वाव, डेली न्यूज एक्टिविस्ट (संडे ड्रीम), 06 जुलाई 2014